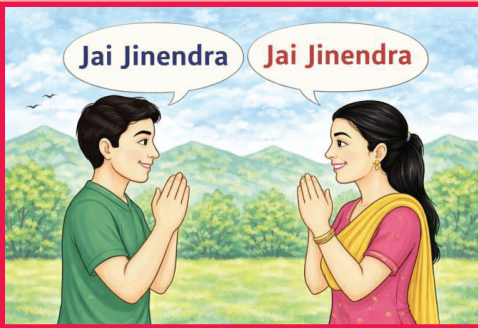


श्री महावीराय नमः जैनं जयति शासनम्

श्रीमत् सुदर्शन गुरवे नमः



जैन संस्कार शिविर पाठ्यक्रम भाग-2



संस्करण : 2026

प्रकाशकीय

भारत देश उच्च संस्कृति वाला देश रहा है और इस संस्कृति की उज्वलता बनाये रखने हेतु विभिन्न समाजों में बच्चों व युवाओं को नैतिक व धार्मिक संस्कार प्रदान करने के प्रयास चलते रहते हैं।

पूज्य गुरुदेव संघ-शास्ता शासन-प्रभावक श्री सुदर्शन लाल जी म. सा. के मुनि-संघ के महामुनिराज महास्थविर, गणाधीश श्री प्रकाश चन्द्र जी म., संघनायक 'शास्त्री' श्री पद्मचन्द्र जी म., संघ संचालक मनोहर व्याख्यानी श्री नरेश मुनि जी म. तथा इनके संघवर्ती अन्य विद्वान् मुनिराजों एवं महासतियों के कृपापूर्ण आशीर्वाद से 'जैन संस्कार शिविर समिति, दिल्ली' द्वारा सन् 2012 से उत्तर भारत के कई प्रान्तों में स्थानीय एस. एस. जैन सभाओं के सहयोग से जैन-संस्कार-शिविर लगाए जा रहे हैं। ये शिविर पूर्णरूप से सम्प्रदाय-निरपेक्ष हैं।

इस पुस्तक के निर्माण में अनेक पूज्य गुरु भगवन्तों व विभिन्न लेखकों की रचनाओं का विनम्र सहयोग लिया गया है। हम उन सब के हृदय से आभारी हैं।

इस पुस्तक को प्रत्येक बच्चा सूक्ष्मता से पढ़े, समझे और उस पर आचरण करे। हमें आशा है कि यह पुस्तक बच्चों तथा युवाओं को जैन धर्म के संस्कार देने में सफल रहेगी।

इसी मंगल मनीषा के साथ...

रवीन्द्र जैन
शिविर-संयोजक

प्रकाशक :

जय जिनशासन प्रकाशन
212, वीर अपार्टमेंट्स, सैक्टर 13,
रोहिणी, दिल्ली-110 085
Mob: +91-98102 87446

Email : jajinshaasanprakaashan@gmail.com

रूपांकन :

सिस्टम्स विज़न, नई दिल्ली
Mob: +91-98102 12565

मुद्रक :

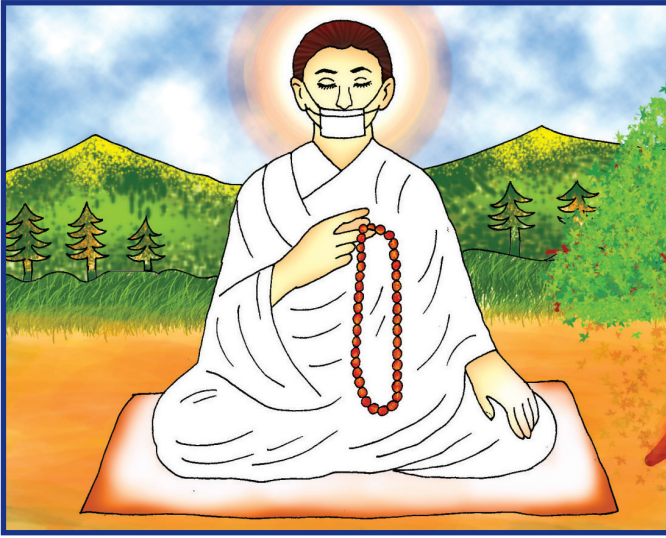
पारस ऑफ़सेट प्रा. लि., दिल्ली
Email: info@parasoffset.com

विषयक्रम

शीर्षक	पृष्ठ संख्या
सूत्र विभाग	
सामायिक सूत्र और प्रतिक्रमण	2
सम्यक्त्व सूत्र	6
तत्त्व विभाग	
नव तत्त्व	7
काय छः	9
पर्याप्ति छः	12
शरीर पांच	13
धर्म और जैन धर्म	16
जैन धर्म के सिद्धान्त	19
बत्तीस आगम	21
यतना	24
सामान्य ज्ञान	
Jain Festivals	25
शाकाहार-सर्वोत्तम आहार	26
कथा विभाग	
भगवान् ऋषभदेव	29
भगवान् महावीर के जीवन पर आधारित कहानियाँ	32
काव्य विभाग	
श्री महावीर जी की आरती	36
प्राकृत विभाग	
प्राकृत भाषा की वर्णमाला	37
व्यावहारिक वाक्य	38
जैन आगमों के मुख्य सूत्र	39



सामायिक सूत्र और प्रतिक्रमण



मूल पाठः

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जाव नियमं
(मुहूर्त) पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि,
मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भंते !
पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ।

भावार्थः

हे भगवन् (मैं) सामायिक करता हूँ। पाप सहित कार्यों का त्याग करता हूँ। जब तक नियम की उपासना करूँ। दो करण (करना, करवाना) तीन योग (मन योग, वचन योग, काया योग) से न स्वयं करूँगा, न करवाऊँगा। मन से, वचन से, काया से। हे भगवन् ! उसका (पूर्व के किये हुए पापों का) प्रतिक्रमण करता हूँ, निंदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ (आत्म साक्षी से), अपनी आत्मा को अलग करता हूँ (पापों से)



सामायिक:

जैनों की उपासना-विधि सामायिक कहलाती है। सामायिक का अर्थ होता है कि समता धारण करना, यानि इस प्रकार का अभ्यास (Exercise) करें कि हमें किसी भी वस्तु या जीव पर न राग (Attachment) रहे और न ही घृणा (Hate)। सामायिक में हम एक स्थान पर 48 मिनट के लिए आसन, मुँहपत्ति, पूंजनी आदि लेकर एवं चोलपट्टा आदि पहनकर स्थानक या घर में एकान्त स्थान पर बैठ जाते हैं। सामायिक करते समय, पैट, पाजामा, Shirt इत्यादि सभी कपड़े उतारकर, सफेद दुपट्टा आदि लेना चाहिए।

सामायिक करने से समभाव की प्राप्ति होती है तथा अट्टारह पाप छूटते हैं। दो घड़ी के लिए साधु जैसा जीवन बीतता है। जीवों की दया और रक्षा की भावना बढ़ती है और दृढ़ बनती है। सामायिक करने से जिनवाणी सुनने, पढ़ने और समझने का अवसर मिलता है।

हमें सामायिक 32 दोष टालकर करनी चाहिए। सामायिक में हमें अपनी गलतियों को भी निहारना चाहिए। हमें सामायिक में अपने शास्त्रों (आगमों) को भी पढ़ने का अभ्यास करना चाहिए। सामायिक विधि सहित करने के लिए सामायिक के 9 सूत्रों को याद करके उनके उच्चारण सहित करनी चाहिए।

सामायिक के 9 पाठों के नाम इस प्रकार हैं—

1. नवकार- सूत्र
2. गुरु वन्दन-सूत्र
3. सम्यक्त्व-सूत्र
4. आलोचना-सूत्र
5. कायोत्सर्ग-सूत्र
6. चतुर्विंशति-स्तव-सूत्र
7. प्रतिज्ञा-सूत्र (सामायिक-सूत्र)
8. शक्रस्तव-सूत्र
9. सामायिक-समाप्ति-सूत्र

सामायिक के मुख्य उपकरण इस प्रकार हैं—

(1) आसन, (2) मुँहपत्ति, (3) पूंजनी, (4) माला (5) चोलपट्टा इत्यादि। इन सब के अतिरिक्त आनुपूर्वी व धार्मिक पुस्तकों का उपयोग करना चाहिए।



सामायिक करने की विधि—

1. पहले स्थान, आसन, पूंजनी, मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर आसन बिछाएं। मुख पर मुखवस्त्रिका बांधे। विराजित साधु-सतियों को वन्दन करें या पूर्व-उत्तर दिशा में 3 बार तिक्खुत्तो के पाठ से गुरुवन्दना करें।
2. खड़े होकर नवकार मंत्र पढ़ें, सम्यक्त्व सूत्र, आलोचना सूत्र और कायोत्सर्ग सूत्र पढ़कर ध्यान में स्थित हों।
3. एक बार ध्यान में चतुर्विंशति-स्तव [लोगस्स] सूत्र पढ़ें। एक नवकार पढ़कर ध्यान खोलें।
4. अब पुनः बोलकर चतुर्विंशति-स्तव सूत्र पढ़ें।
5. अब प्रतिज्ञा सूत्र पढ़ें और एक सामायिक करनी हो तो मुहूर्त 1 घड़ी 2 (दो सामायिक के लिए मुहूर्त 2 घड़ी 4 बोलकर पढ़ें।)
6. फिर नीचे बैठकर बायां घुटना खड़ा कर, दोनों हाथ जोड़कर दो बार शक्रस्तव सूत्र (नमोत्थुणं का पाठ) पढ़ें। दूसरी बार में 'ठाणं संपत्ताणं' के स्थान पर 'ठाणं संपाविउ-कामाणं' बोले और इसके बाद घड़ी में समय देखकर सामायिक की शुरुआत करें।

सामायिक पारने की विधि:

आलोचना सूत्र से शुरुआत कर दो बार नमोत्थुणं तक पढ़ें। प्रतिज्ञा सूत्र नहीं पढ़ना। नमोत्थुणं के बाद समाप्ति सूत्र पढ़ें, फिर तीन बार नवकार मंत्र पढ़कर सामायिक को पूर्ण करें।

समाप्ति सूत्र:

“नौवें सामायिक व्रत के विषय में, जो कोई अतिचार लगा हो तो आलोऊं। मन, वचन, काया का खोटा योग बरताया हो, सामायिक



में समता न की हो, बिना पूगी पारी हो। 10 मन के, 10 वचन के, 12 काया के, इन 32 दोषों में कोई पाप-दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।”

सामायिक में स्त्री कथा/पुरुष कथा, भक्त (भोजन) कथा, देश कथा, राज कथा, इन 4 प्रकार की कथाओं से और आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा तथा परिग्रहसंज्ञा नामक इन 4 संज्ञाओं से बचना चाहिए।

प्रतिक्रमण:

मन, वचन, काया की हलचल (प्रवृत्ति) से लगे हुए दोषों की आलोचना करना प्रतिक्रमण (या आवश्यक सूत्र) कहलाता है।

प्रतिक्रमण के 5 भेद हैं—

1. दैवसिक : प्रतिदिन सायंकाल किया जाने वाला।
2. रात्रिक : प्रतिदिन सूर्योदय से पूर्व किया जाने वाला।
3. पाक्षिक : हर महीने की पूर्णिमा और अमावस्या की सायंकाल किया जाने वाला।
4. चातुर्मासिक : हर 4 महीने बाद आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की पूर्णिमा को सायंकाल किया जाने वाला।
5. सांवत्सरिक : प्रतिवर्ष भादवा सुदी पंचमी (संवत्सरी महापर्व) को सायंकाल किया जाने वाला।

पूर्ण रूप से प्रतिक्रमण याद करने के लिए “श्रावक प्रतिक्रमण” की अलग से पुस्तक पढ़ें। जिसमें प्रतिक्रमण में प्रयुक्त सभी पाठ विधि सहित दिए गए हैं। यह पुस्तक <https://jainsanskarshivir.com/downloads/> पर ऑनलाइन उपलब्ध है।



सम्यक्त्व सूत्र

अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपण्णत्तं तत्तं, इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥1॥

पंचिदिय-संवरणो, तह नवविह-बंधेचर-गुत्तिधरो ।
चउविह-कसाय-मुक्को, इअ अट्टारस-गुणेहिं संजुत्तो ॥2॥

पंच महव्वय जुत्तो, पंच विहायार-पालण-समत्थो ।
पंच-समिओ तिगुत्तो, छत्तीस-गुणो गुरू मज्झं ॥3॥

इस पाठ में देव, गुरु और धर्म की पहचान के बारे में बताया गया है और किसी साधु में मुख्य रूप से क्या-2 गुण होने चाहिए, उनका वर्णन है।

भावार्थ :

- अरिहंत मेरे देव हैं, जीवन पर्यन्त श्रेष्ठ साधु मेरे गुरु हैं, जिन भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्त्व ही धर्म है, यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण की है।
- पाँच इन्द्रियों को संवर में करने वाले, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्तियों को धारण करने वाले, 4 प्रकार के कषायों से मुक्त, इन 18 गुणों से सहित,
- 5 महाव्रतों से युक्त, 5 प्रकार का आचार पालने वाले, 5 समिति 3 गुप्ति से युक्त, इस प्रकार 36 गुणों वाले मेरे गुरु हैं।

पाँच महाव्रत : (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह),

पाँच इन्द्रियां : (स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुः इन्द्रिय, श्रोत्रेन्द्रिय),



चार कषाय : (क्रोध, मान, माया, लोभ),

पाँच समिति : (ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेप समिति, उच्चार पासवण समिति)

तीन गुप्ति : (मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति),

पाँच आचार : (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार)

जैन साधु, ऊपर लिखित 36 गुणों के धारक होते हैं। 5 समिति, 3 गुप्ति को अष्ट प्रवचन माता भी कहते हैं। हमें किसी भी साधु-साध्वी में इन 36 गुणों के आधार पर श्रद्धा करनी चाहिए।

नव तत्त्व

वस्तु का स्वभाव तत्त्व कहलाता है। जैसे अग्नि का स्वभाव उष्ण है, यह तत्त्व हुआ। मोक्ष प्राप्ति के लिए अवश्य जानने योग्य विषयों को तत्त्व कहते हैं। ये नौ हैं।

जीव तत्त्व, अजीव तत्त्व, पुण्य तत्त्व, पाप तत्त्व, आस्रव तत्त्व, संवर तत्त्व, निर्जरा तत्त्व, बन्ध तत्त्व, मोक्ष तत्त्व ।

1. **जीव** : जो जीता है, प्राण धारण करता है, चेतना शक्ति से सम्पन्न है, वह जीव कहलाता है, जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े-मकौड़े, पेड़-पौधे आदि।
2. **अजीव**: जो जीव का विरोधी तत्त्व है, अर्थात् जीवित नहीं रहता तथा चैतन्य शक्ति से रहित है, वह अजीव कहलाता है, जैसे मेज, कुर्सी, पलंग, पंखा, मृत शरीर आदि।

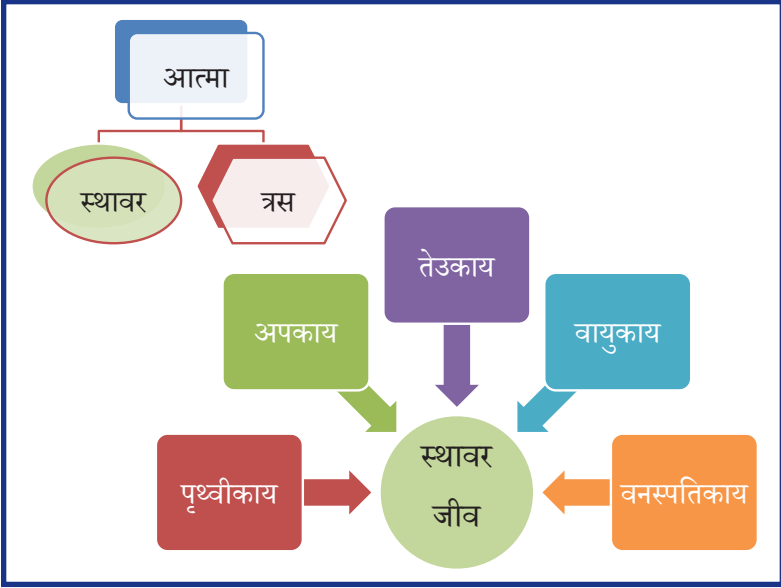


3. **पुण्य** : जिस शुभ क्रिया से जीव को कालान्तर में सुख मिलता है, वह पुण्य कहलाता है जैसे अन्न, जल, वस्त्र, औषधि आदि का दान करना।
4. **पाप** : जिस अशुभ क्रिया से जीव को कालान्तर में दुख मिलता है, वह पाप कहलाता है, जैसे हिंसा, झूठ, चोरी, अनाचार, शोषण आदि करना।
5. **आस्रव** : जिन मार्गों से आत्मा में कर्मों का प्रवेश होता है, वे आस्रव कहलाते हैं, जैसे मिथ्यात्व (धर्म-विषयक विपरीत ज्ञान), अविरति (सांसारिक विषय-भोगों को न त्यागना), प्रमाद (धर्म-कार्यों में आलस्य), कषाय (क्रोध, मान माया, लोभ) आदि।
6. **संवर** : जिन मार्गों से आत्मा में कर्मों का प्रवेश रुकता है, वे संवर कहलाते हैं, जैसे सम्यक्त्व, विरति, अप्रमाद, अकषाय आदि।
7. **बन्ध** : आत्मा का और कर्म का परस्पर बन्ध होना, जैसे दूध और पानी का मिश्रण, घी और खिचड़ी की तरह मिलना
8. **निर्जरा** : आत्मा से लगे कर्मों का कुछ अंश में अलग होना निर्जरा कहलाती है। अनशन (अन्न, जल का त्याग) ऊनोदरी (भूख से कम खाना) आदि निर्जरा के उपाय हैं।
9. **मोक्ष** : आत्मा से सर्व कर्मों का शत-प्रतिशत क्षय (अलग) होना। इसके बाद आत्मा शाश्वत मोक्ष में चली जाती है।

इन नौ तत्त्वों में जीव व अजीव ज्ञेय (जानने योग्य) संवर, निर्जरा व मोक्ष उपादेय (ग्रहण करने योग्य) हैं। पाप, आस्रव व बन्ध हेय (छोड़ने योग्य), पुण्य गृहस्थ के लिए उपादेय है, परन्तु मुनियों के लिए ज्ञेय है।



काय छः



1. पृथ्वीकाय,
2. अपकाय,
3. तेउकाय,
4. वायुकाय,
5. वनस्पतिकाय,
6. त्रसकाय

जीवों को किस प्रकार का शरीर मिला है, इस आधार पर यहाँ वर्गीकरण है। इसके छह भेद हैं, परंतु मुख्यतया इसको दो भेदों में बांटा जा सकता है— 1. स्थावर, 2. त्रस।

स्थावर—

‘स्थावर’ का अर्थ है— ‘स्थिर’। जिन जीवों को इतना हीन शरीर मिला है कि वे बिना बाह्य कारण के, केवल अपनी शक्ति के आधार पर, गति नहीं कर सकते, उन्हें ‘स्थावर’ कहते हैं। जैसे— जीवित मिट्टी, जीवित पानी आदि। स्थावर काय में सिर्फ एकेन्द्रिय जीव ही आते हैं। स्थावर के पांच भेद हैं और कुल 6 भेद बनते हैं।

अब छह भेदों पर आते हैं—

1. **पृथ्वीकाय**— जिन जीवों का शरीर ही मिट्टी अर्थात् पृथ्वी होता है, उन्हें पृथ्वीकाय कहते हैं। जैसे— खान में मिलने वाला पत्थर, हीरा, पन्ना, नमक तथा साधारणतया 6 इंच नीचे की मिट्टी। ये सभी जीव हैं। पत्थर, नमक, मिट्टी आदि यद्यपि बाहर से हमें पत्थर, नमक आदि रूपों में दिखाई देते हैं, परंतु ये सब जीवित हैं। इनकी जो आकृति हमें दिखाई दे रही है, वह इन जीवों का शरीर है।

2. **अप्काय**— पानी के रूप में पैदा होने वाले जीवों को अप्काय कहते हैं। पाँचों स्थावरकाय में यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि जिस-जिस काय के नाम से जो जीव जाना जाता है, वही उसका शरीर है। जैसे अप्काय का अर्थ साधारणतया पानी के जीव कर देते हैं, परंतु पानी के जीव का अर्थ पानी के अंदर रहने वाले जीव, जैसे— मछली, मेंढ़क, मगरमच्छ आदि नहीं होता। ये जीव पानी के अंदर रहते जरूर हैं, पर इनका शरीर पानी का नहीं होता। इसलिए ये सब अप्काय न होकर त्रस जीव हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से भले ही पानी, हाइड्रोजन गैस के 2 तथा आक्सीजन गैस के 1 परमाणु का यौगिक मात्र हो, परंतु जैन दर्शन के अनुसार पानी भी अपने आप में जीव-रूप है। पानी नामक पदार्थ जो हमें दिखायी दे रहा है, वह उन जीवों का शरीर है, जिन्हें हम अप्काय के जीव कहते हैं।

3. **तेउकाय**— जैन दर्शन के अनुसार अग्नि भी तेउकाय जीवों के शरीर का पिण्ड है। अग्नि कई प्रकार की होती है; जैसे— अंगारे की अग्नि, ज्वाला की अग्नि, बिना धुएँ की शुद्ध अग्नि, उल्कापात रूपी अग्नि आदि। विज्ञान के विद्यार्थियों को अग्नि के शीर्षक से जो पढ़ाया जाता है, वह अग्नि वैज्ञानिक दृष्टि से जीवित न होकर, मात्र भौतिक या रासायनिक परिवर्तन की एक घटना-मात्र है। परन्तु जैन दृष्टि से, जब तक अग्नि-कण चमकते हैं, चिंगारी या चमक Flash देते हैं, तब तक वे सचित (जीवित) माने गए हैं।

4. **वायुकाय**— जो वायु बहती है, वह हमें मात्र स्पर्श से अनुभव होती है। पारदर्शी होने के कारण सूक्ष्मदर्शी यंत्र आदि से भी दिखाई नहीं देती। यह



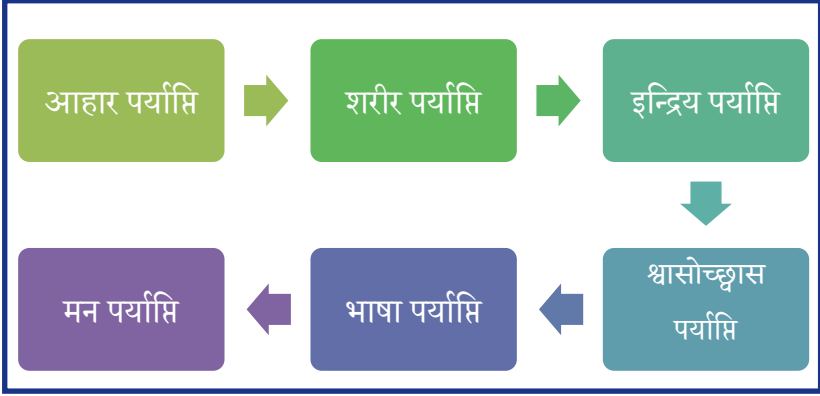
वायु भी वायुकाय जीवों का ही पिण्ड रूप होने से सचित्त है।

5. वनस्पतिकाय— सम्पूर्ण वनस्पति-जगत्, जैसे— पेड़, फल, फूल, बीज, पत्ती, घास-फूस आदि वनस्पतिकाय का ही रूप है। लगभग 100 वर्ष पूर्व प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक डा. जगदीश चन्द्र बसु ने अपने यंत्रों से यह सिद्ध किया था कि वनस्पति के अंदर भी जीवन है। अतः सही मायनों में 'काय' वाले जीवों के अंतर्गत, विज्ञान केवल 'वनस्पतिकाय' जीवों को ही पकड़ पाया है, अन्य काय के जीवों को नहीं।

- ये पाँचों काय के जीव 'स्थावर काय' के अंतर्गत आते हैं; क्योंकि ये स्वयं गति नहीं कर सकते। यद्यपि प्रत्यक्षतः हमें जल बहता हुआ, वायु बहती हुई, अग्नि भभकती हुई दिखाई देती है, परंतु यह गति इन 'काय' के जीवों की अपनी शक्ति से नहीं, अपितु बाह्य कारणों से होती है।
- इन पाँचों स्थावर कायों के शरीर जब तक जीवन से युक्त हैं, तब तक सचित्त या सजीव कहलाते हैं, तथा अग्नि या अन्य कारणों से मृत होने के बाद, अचित्त, अजीव या प्रासुक कहलाते हैं।

6. त्रसकाय— जो जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्वयं की शक्ति से गति कर सकते हैं, उन्हें 'त्रस' जीव कहते हैं। 'त्रस' शब्द का व्युत्पत्ति-सिद्ध अर्थ है— डरना। अर्थात् जो जीव सर्दी, गर्मी, भूख-प्यास या किसी आक्रमण आदि बाधाओं से डरकर (त्रस्त होकर), एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन करते हैं, या कर सकते हैं, जैसे— कीड़े, मकौड़े, पशु-पक्षी, मनुष्य, नारकी तथा देवता। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय व पंचेन्द्रिय जाति के जीव 'त्रस' जीव ही होते हैं।

पर्याप्ति छः



1. आहार पर्याप्ति, 2. शरीर पर्याप्ति 3. इन्द्रिय पर्याप्ति
4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति 5. भाषा पर्याप्ति 6. मनः पर्याप्ति

जब कोई आत्मा किसी एक जन्म का आयुष्य पूर्ण करके, अगले भव में, नए शरीर को ग्रहण करने का कार्य करती है, तब वहाँ पर, उत्पत्ति के प्रथम समय में, वहाँ विद्यमान पुद्गलों का आहार ग्रहण करती है। फिर उस आहार को, अपने जीवन के विकास-हेतु आवश्यक शरीर, इन्द्रिय, श्वास आदि रूपों में धीरे-धीरे ढालना प्रारम्भ कर देती है। ग्रहण किए गए आहार को, भिन्न-भिन्न रूप में बदलने की आत्मा की इस विशेष शक्ति को ही 'पर्याप्ति' कहते हैं। प्रथम समय में ग्रहण किया गया यह आहार, जीवात्मा के भावी जीवन का आधार (Base) बनता है। जैसे कोई व्यक्ति नया घर बनवाने के लिए, पहले सीमेंट, ईंट, रेत आदि इकट्ठा करता है, वह उस ढाँचे का मुख्य आधार होता है। तो समझो, यह आहार पर्याप्ति की तरह है। फिर जो दीवार आदि से युक्त ढाँचा बनता है, वह शरीर पर्याप्ति की तरह है। खिड़की, दरवाजे आदि इन्द्रिय पर्याप्ति की तरह हैं। इन्द्रियों के बाद श्वास-प्रश्वास, फिर भाषा-यन्त्र तथा अन्त में चिन्तन-शक्ति विकसित होती है। ये क्रमशः श्वास-पर्याप्ति, भाषा-पर्याप्ति तथा मनः पर्याप्ति कहलाते हैं।

कम-से-कम 3 पर्याप्तियां हर जीव के पास होती हैं। भले ही किसी जीव को, एक जन्म में, न्यूनतम आयु (256 आवलिका) ही मिले, तो भी प्रथम तीन पर्याप्तियां— आहार, शरीर, इन्द्रिय तो उसे प्राप्त होंगी ही तथा चौथी श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति पूर्ण करने से पहले ही वह मर जाएगा। रही अधिकतम की बात, तो एकेन्द्रिय को पहली चार, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय तथा असंज्ञी (बिना मन वाले) पंचेन्द्रिय जीवों को पहली पांच एवं संज्ञी (मन वाले) पंचेन्द्रिय को छहों पर्याप्तियां प्राप्त होती हैं। इन जीवों को 'पर्याप्त' कहलाने के लिए इतनी-इतनी पर्याप्तियों का होना जरूरी है। अगर अपनी अधिकतम पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना, कोई जीव काल कर जाता है, तो उसे अपर्याप्त अवस्था में मरण कहते हैं। परंतु वहाँ पर भी वह कम-से-कम पहली 3 पर्याप्तियाँ तो पूर्ण करेगा ही।

शरीर पांच



1. औदारिक शरीर,
2. वैक्रिय शरीर,
3. आहारक शरीर,
4. तैजस् शरीर तथा
5. कार्मण शरीर।

यहाँ पर शरीर का अर्थ वही है, जो आम बोलचाल में होता है, जिसे अंग्रेजी में Body कहते हैं। इसके 5 भेद होने पर भी, इसे मुख्यतया दो भागों में बाँटा जा सकता है— स्थूल एवं सूक्ष्म। पहले तीन शरीर स्थूल हैं तथा अन्तिम दो (4, 5) सूक्ष्म शरीर हैं। जब तक आत्मा मोक्ष में नहीं जाती, तब तक शरीर से उसका छुटकारा नहीं होता। मोक्ष में पहुँचने के बाद शरीर से छुटकारा हो जाता है; अतः सिद्धों को 'अशरीरी' भी कहते हैं। पाँचों शरीरों की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है—

1. **औदारिक शरीर**— विशेष प्रकार के औदारिक पुद्गलों अर्थात् पदार्थों; जैसे— हड्डी, मांस, खून व रस आदि से बने शरीर को 'औदारिक शरीर' कहते हैं। गलना, सड़ना, आहार से वृद्धि प्राप्त करना, बिना आहार के क्षय (घटना) होना, रोग तथा बुढ़ापे का शिकार होना आदि औदारिक शरीर के लक्षण हैं। मनुष्य की, पशु-पक्षियों की जो देह हमें दिखाई देती है, तथा वनस्पति फल-फूल, पेड़-पौधों आदि की जो संरचना व आकार हमें दिखाई देता है, वह इनका औदारिक शरीर है। पृथ्वी, पानी आदि भी जो पदार्थ दिखाई देते हैं, वह उन काय के जीवों का औदारिक शरीर है। जीव विज्ञान में जीव अथवा life के जितने लक्षण हैं, वे सब औदारिक शरीर पर ही घटित होते हैं। शेष शरीर औदारिक की अपेक्षा सूक्ष्म होने से विज्ञान की पकड़ से बाहर हैं। मनुष्य तथा तिर्यच को औदारिक शरीर अवश्य होता है।

2. **वैक्रिय शरीर**— जिस शरीर से विभिन्न रूप बनाने संबंधी विविध क्रियाएँ हों, उसे 'वैक्रिय शरीर' कहते हैं। इसका निर्माण औदारिक शरीर की तरह हड्डी-मांस आदि से नहीं होता। कुछ विशेष प्रकार के पदार्थ मिलकर इसका निर्माण करते हैं। जिस प्रकार पारा मिलता है व बिखर जाता है, उसी प्रकार वैक्रिय शरीर मिलता-बिखरता रहता है। विभिन्न प्रकार के रूप (मनुष्य, पशु-पक्षी या अजीव उपकरण; जैसे— घड़ा, डण्डा, सिंहासन,

विमान, वाहन आदि), विभिन्न प्रकार की हू-ब-हू शक्तें बनाना, मच्छर से भी अधिक छोटा तथा पर्वत से भी अधिक बड़ा शरीर बना लेना, अदृश्य हो जाना, एक जैसे अनेकों शरीर बना लेना, वैक्रिय शरीर की करामात से संभव है। देवों तथा नारकियों का शरीर वैक्रिय शरीर ही होता है।

मनुष्यों तथा पाँचों इन्द्रियों वाले तिर्यचों (पशु-पक्षियों) को भी विशेष साधना से यह शरीर प्राप्त हो सकता है, जिसे लब्धि-प्रत्यय वैक्रिय कहते हैं।

3. आहारक शरीर— चारों गतियों (नरक, तिर्यच, मनुष्य तथा देव) में से, यह शरीर केवल मनुष्य गति में ही संभव है। वह भी साधु को, तथा साधु में भी चौदह पूर्व (विशेष ज्ञान) के ज्ञाता साधु को ही यह शरीर हो सकता है। जब चौदह पूर्व के ज्ञाता साधु को किसी विषय में कोई शंका होती है, तो वह सुदूर स्थित तीर्थकर भगवान् से, अपना संशय दूर करने के लिए, अथवा उनके दर्शन करने के लिए, अपने मूल औदारिक शरीर में से, अपने रूप जैसा ही, एक हाथ जितना स्फटिक रत्न का, पारदर्शी, बहुत सुंदर, दिव्य शरीर निकालते हैं। यह पारदर्शी शरीर वायु से भी सूक्ष्म, आत्मा के समान अप्रतिघाती (बिना रुकावट कहीं से भी पार हो जाने वाला) तथा 5 इन्द्रिय व मन से युक्त होता है। जैसे राडार से किरणें प्रक्षेपित होती हैं तथा वापस आ जाती हैं, उसी प्रकार यह शरीर भी तीर्थकर भगवन्तों तक जाता है, फिर वहाँ से संदेश व दृश्य एक वीडियो कैमरे की तरह, भेजने वाले मुनि तक पहुँचा देता है। तत्पश्चात् वहाँ से वापस आकर मूल शरीर में समा जाता है और एक बुलबुले की भाँति समाप्त हो जाता है।

4. तैजस शरीर— यह उष्णता-प्रधान पुद्गलों से बना होता है और गर्मी का रूप होता है। नए जन्म में, नए शरीर की रचना में सहायक होता है। नए जन्म के स्थान पर, सर्वप्रथम ग्रहण किए गए आहार का पाचन, इसी शरीर से होता है। यह अदृश्य होता है तथा किसी भी उपकरण की पकड़ में न आए, इतना सूक्ष्म होता है। यह गर्मी का एक पुंज रूप होता है। जठराग्नि (पेट की गर्मी) भी इसी को कहते हैं। यह शरीर हर अवस्था में संसारी

आत्मा के साथ ही लगा रहता है। इसके जाने की वजह से ही शरीर मरने के बाद टंडा होता है।

5. **कार्मण शरीर**— हमारी आत्मा से लगे हुए कर्म, एक पिण्ड रूप में, संग्रह रूप में रहते हैं। इन कर्मों के समूह का नाम ही कार्मण शरीर है। जैसे एक कंप्यूटर की हार्ड डिस्क में विभिन्न प्रकार के सॉफ्टवेयर प्रोग्राम स्टोर रहते हैं, इसी सॉफ्टवेयर की तरह हमारा कार्मण शरीर है। यह कार्मण शरीर अंदर रहता हुआ, एक कुशल अकाउंटेंट की भाँति, कर्मों का पूरा लेखा-जोखा रखता है। वैदिक दर्शन में जो काम चित्रगुप्त यमराज के लिए करता है, जैन दर्शन में वही काम कार्मण शरीर, आत्मा के लिए करता है। यह शरीर भी, हर अवस्था में संसारी आत्मा के साथ ही लगा रहता है।

इस प्रकार तैजस् तथा कार्मण दोनों सूक्ष्म शरीर, सिद्ध होने तक, आत्मा के साथ लगे रहते हैं तथा जब जीवात्मा एक स्थान छोड़कर, दूसरे स्थान पर जन्म लेने के लिए चलती है, तो रास्ते में भी उसी के साथ रहते हैं।

धर्म और जैन धर्म



धर्म की अनेक परिभाषाएँ हैं :

किसी भी वस्तु के स्वभाव (Nature) को धर्म कहते हैं। जैसे पानी का स्वभाव शीतलता (Coldness) है, अग्नि का स्वभाव गर्मी है। इसी प्रकार हमें अपनी आत्मा के स्वभाव को जानना है, और आत्मा का स्वभाव है अनन्त ज्ञान (Infinite Knowledge), अनंत दर्शन (Infinite Perception) ।

धर्म की दूसरी परिभाषा हम इस प्रकार से कह सकते हैं कि यह एक दर्शन (Philosophy) है, और दुनिया में बहुत सारे दर्शन हैं, जैसे हिन्दू, सिख, यहूदी, बौद्ध, मुसलमान व जैन आदि और यह Philosophy हमें जीवन जीने की राह सिखाती है।

धर्म की तीसरी परिभाषा हो सकती है : श्रेष्ठ आचरण, जो जीव को स्वर्ग या मोक्ष तक ले जाता है।

श्रेष्ठ आचरण क्या है? किसी जीव की हिंसा न करना, झूठ नहीं बोलना, चोरी नहीं करना। अनाचार-व्यभिचार नहीं करना। लूटपाट, शोषण नहीं करना। सभी जीवों पर दया का भाव रखना। सत्य बोलना। मधुर बोलना। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि दुर्गुणों का त्याग रखना।

हमारी जीव-आत्मा संसार में अनादि काल से जन्म-मरण कर रही है। और तब तक करती रहेगी, जब तक सभी कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त नहीं करती।

[संसार क्या है? चार गति, पाँच जाति, छः काय, 84 लाख जीव-योनि आदि में बार-बार जन्म-मरण करना]

जैन धर्म :

जैन धर्म भी एक दर्शन (Philosophy) है, जिसका आचरण करके हम अपनी आत्मा के स्वभाव (Infinite Knowledge, Infinite Perception) को उजागर कर सकते हैं और उसमें रमण कर सकते हैं और इसे ही हमने जैन धर्म कहा है। हम इसे इस प्रकार से भी परिभाषित

कर सकते हैं : राग-द्वेष के विजेता (जिन या जिनेंद्र) तीर्थंकर भगवान् द्वारा फरमाया गया धर्म “जैन धर्म” है।

जैन शब्द ‘जिन’ से बना है। ‘जिन’ उसे कहते हैं, जिसने अपनी आत्मा के राग और द्वेष (Attachment & Hate) नामक बुराइयों को जीत लिया है। उन्हें हम अरिहंत भी कहते हैं।

सामायिक, व्रत, पौषध, दान, शील, तप एवं शुद्ध भाव की आराधना आदि के द्वारा या यों कहें कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य व तप की आराधना से आत्मा के शुद्ध रूप को प्रकट किया जा सकता है।

भगवान् महावीर ने तीन मुख्य सिद्धांत प्रदान किये हैं :-

- (1) आचार में अहिंसा (Following Non-Violence)
- (2) विचार में अनेकान्तवाद (Manysidedness in Thoughts)
- (3) व्यवहार में अपरिग्रहवाद (Practising Non Possessiveness)

जैन धर्म के अनुयायी तीन प्रकार के हैं-

1. साधु-साध्वी: घर त्याग कर, दीक्षा धारण करके, पाँच महाव्रतों की साधना करने वाले । भारतवर्ष में इनकी संख्या 19,000 के लगभग है।
2. श्रावक-श्राविका: घर में रहकर जैन विधि अनुसार व्रत ग्रहण करके जीवन जीने वाले। इनकी संख्या लाखों में है।
3. सामान्य जैन:- जैन धर्म व गुरुओं पर श्रद्धा रखते हुए, बड़े पापों का त्याग करके जीवन जीने वाले। देश-विदेश में इनकी संख्या एक करोड़ से ऊपर है।

जैन धर्म की स्थापना प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने की। वर्तमान में 24 वें तीर्थंकर, भगवान् महावीर का धर्म-शासन चल रहा है।



जैन धर्म के सिद्धान्त

भ. महावीर ने मानव कल्याण हेतु तीन सिद्धान्त (Three Principle) इस दुनिया को दिए और अगर इन सिद्धान्तों का पालन सभी के द्वारा किया जाए तो हर प्राणी का कल्याण हो सकता है और हर जीव (प्राणी) सुख का अनुभव कर सकता है।

जैन धर्म के 3 मुख्य सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार से है :

1. आचार में अहिंसा, 2. व्यवहार में अपरिग्रहवाद, 3. विचार में अनेकान्तवाद

1. आचार में अहिंसा : सभी जीवों (Living Being) के प्रति सयंम रखना, समभाव रखना अहिंसा है।

भ. महावीर ने फरमाया कि किसी का भी वध मत करो, क्योंकि जिसे तुम मारना चाहते हो वह और कोई नहीं, तुम स्वयं हो। (सभी जीवों की आत्मा समान है) मैं सब जीवों को क्षमा (Forgive) करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें। कम से कम हम किसी निरपराधी जीव को नहीं मारेंगे और उसे कष्ट नहीं पहुंचाएंगे। अभय दान सबसे बड़ा दान भी है।

2. व्यवहार में अपरिग्रहवाद : अपरिग्रह: इसका अर्थ है वस्तु के प्रति ममता और मूर्छा का अभाव। भ. महावीर ने कहा कि वस्तु परिग्रह नहीं है, अपितु वस्तु के प्रति आर्कषण परिग्रह है। आज समाजवाद (Socialist) और साम्यवाद (Capitalist) की चर्चा चल रही है, पर हमारी आशाएं, आकांक्षाएं (Hopes & Desires) आसमान को छूने लगी हैं। इन सब का समाधान करने के लिए भ. महावीर ने हमें एक व्रत दिया, जिसे हम इच्छा परिमाण (Limiting the Desires) कहते हैं। अतः हमें वस्तुओं के प्रति कम से कम आकर्षण करना चाहिए।

भ. महावीर ने यह नहीं कहा कि आप आजीविका करते हुए धन एकत्रित न करो, अपितु उन्होंने यह कहा कि हमें अपनी आजीविका नैतिक तरीकों

से चलानी चाहिए और अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हुए समाज के अन्य सदस्यों व राष्ट्र की आवश्यकताओं को भी पूरा करने का सद-पुरुषार्थ करना चाहिए।

3. विचार में अनेकान्तवाद: अनेकान्तवाद: भ. महावीर ने कहा कि प्रत्येक घटना के अनेक रूप होते हैं। हम उस घटना के सभी रूपों को देखेंगे, तो हमारी सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। जब हम सोचते हैं कि “मैं ही ठीक हूँ, मैं ही सही हूँ” तब हम उस घटना के एक पहलू को देखते हैं और जब हम यह सोचते हैं कि “मैं ठीक हूँ, मैं सही हूँ और आप (तुम) भी सही हो सकते हो” तो इससे हम उस घटना के दूसरे पहलू को भी देखने की कोशिश कर रहे होते हैं, यही अनेकान्तवाद है। (i.e. There are Many Dimensions of any Incident and if we Adopt this Principle in Our Life, it will Solve many Problem of the Universe.) अतः हमें किसी भी घटना, विचार, वस्तु को उसके विभिन्न पहलुओं से सोचना, देखना, विचारना चाहिए और तभी कोई पक्का निर्णय करना चाहिए।



बत्तीस आगम



जगत् के सब जीवों की रक्षा और दया के लिए तीर्थंकर भगवान् धर्म-देशना देते हैं। भगवान् की यह वाणी सूत्र, शास्त्र या आगम कहलाती है।

आगम के तीन भेद हैं— सूत्रागम, अर्थागम और उभयागम। 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' यह मूल पाठ सूत्रागम है। 'धर्म उत्कृष्ट मंगल है' यह

अर्थागम है। दोनों मिलकर उभयागम या तदुभयागम कहलाते हैं। तीर्थकर भगवान् अर्थरूप आगम की देशना देते हैं, उनके प्रधान शिष्य (गणधर) उनको सूत्र-रूप में गुन्थित करते हैं। इनके आधार पर कुछ विशिष्ट ज्ञानी आचार्य अन्य सूत्रों की भी रचना करते हैं।

तीर्थकर प्रभु का सम्पूर्ण उपदेश बारह अंगों में समाविष्ट होता है। उस उपदेश को उनके गणधर यत्नपूर्वक संभाल कर रखते हैं, इसलिए सम्पूर्ण शास्त्र-भंडार 'द्वादशांग-गणिपिटक' कहलाता है।

भगवान् महावीर स्वामी ने भी तीर्थ स्थापना करते हुए गौतम आदि 11 गणधरों को द्वादशांग-वाणी का उपदेश दिया। वीर-निर्वाण के 1000 वर्ष बाद (सन् 473 ई.) 12वां अंग 'दृष्टिवाद' काल-प्रभाव से लुप्त हो गया। अन्य 11 आगमों के भी बहुत से पाठ समाप्त हो गए। सिन्धु में से बिन्दु-मात्र ही शेष रहा।

तीर्थकरों का उपदेश गणधरों द्वारा मौखिक रूप से ग्रहण किया जाता है, जो शिष्य-परम्परा द्वारा आगे से आगे प्रचारित होता है।

आगमों की भाषा अर्धमागधी प्राकृत है। स्थानकवासी व तेरापन्थी सम्प्रदाय के अनुसार कुल 32 आगम हैं। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक इन 32 के अतिरिक्त 13 और आगम मानते हैं। अतः वे कुल 45 आगम मानते हैं।

32 आगम पाँच भागों में विभक्त हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं:—

11 अंग-सूत्र, 12 उपांग-सूत्र, 4 छेद-सूत्र, 4 मूल-सूत्र, 1 आवश्यक-सूत्र

11 अंग-सूत्र—

1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3. स्थानांग, 4. समवायांग, 5. व्याख्या-प्रज्ञप्ति (भगवती), 6. ज्ञाताधर्म-कथांग, 7. उपासक-दशांग, 8. अन्तकृद्-दशांग, 9. अनुत्तरौपपातिक, 10. प्रश्न-व्याकरण 11. विपाक।

12 उपांग-सूत्र—

1. औपपातिक, 2. राजप्रश्रीय, 3. जीवाजीवाभिगम, 4. प्रज्ञापना,
5. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, 6. चन्द्र-प्रज्ञप्ति, 7. सूर्य-प्रज्ञप्ति, 8. निरयावलिका,
9. कल्पावतंसिका, 10. पुष्पिका, 11. पुष्पचूलिका, 12. वृष्णिदशा ।

4 छेद-सूत्र—

1. व्यवहार, 2. बृहत्कल्प, 3. निशीथ, 4. दशा-श्रुतस्कन्ध ।

4 मूल-सूत्र—

1. दशवैकालिक, 2. उत्तराध्ययन, 3. नन्दी, 4. अनुयोगद्वार ।

1 आवश्यक-सूत्र

इन 32 शास्त्रों के मूल, अर्थ या उभय (दोनों) का स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय-कर्म का क्षय होता है, मोहनीय कर्म की श्रृंखलाएं टूटती हैं और आत्मा विकास करती-करती अरिहन्त और सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती है।

यतना

विवेक पूर्वक कार्य करना यतना कहलाती है और यतना से किया कार्य धर्म होता है ।

- यतना पालने से जीव-हिंसा से बचाव, शुभ कर्म का बन्ध, आत्मा की शांति और सामाजिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति होती है। यतना के कुछ कार्य ये हैं -
- साधु-साध्वियों से खुले मुंह नहीं बोलना। मुख पर मुखपत्ती या रूमाल या हाथ लगाकर बोलना।
- गुरुओं के साथ चलते समय हरी घास पर पैर नहीं रखना।
- गुरुओं को आहार बहराते समय केवल विनति करना। जिद्द नहीं करनी। झोली नहीं पकड़नी।
- धार्मिक उपकरणों की आशातना नहीं करना। उन पर थूक नहीं लगाना। पैर भी नहीं लगाना। जमीन पर नहीं रखना।
- बाग में सैर करने जाएं, तो हरी घास पर नहीं चलना। फूल या डाली नहीं तोड़ना।
- हरी काई पर पैर नहीं रखना।
- रात्रि में सोने से पूर्व घर की अधिकांश लाइटों को बन्द करना।
- प्रवचन में स्वयं या बच्चों के द्वारा शोर नहीं करने देना।
- प्रवचन में सही समय पर आना। प्रवचन में सामायिक करने का भाव रखना।
- प्रवचन के बीच में आना हो, तो लोगों के बीच में नहीं घुसना। पीछे ही स्थान ग्रहण करना।

Jain Festivals

महावीर जयन्ती :

प्रभु महावीर का जन्म चैत्र (मार्च /अप्रैल) महीने में त्रयोदशी के दिन कुंडलपुर (बिहार) में राजा सिद्धार्थ की पत्नी रानी त्रिशला की कुक्षि से हुआ था। इस दिन प्रभात फेरी, प्रभु के भजन, कीर्तन व आरती, तपस्या आदि का आयोजन किया जाता है। यह दिन हर वर्ष महावीर जयन्ती के रूप में मनाया जाता है।

अक्षय तृतीया :

इसे प्रभु ऋषभदेव के पारणा दिवस (वैशाख महीना की तृतीया—April/May) के रूप में मनाया जाता है। इस दिन श्रेयांस कुमार के हाथों से गन्ने के रस द्वारा प्रभु ऋषभदेव की एक वर्ष की तपस्या का पारणा हुआ था। इस दिन को श्रावक-श्राविकाएं वर्षोत्तप का पारणा करते हैं और नई तपस्या को प्रारंभ करते हैं। इस दिन दान भी दिया जाता है।

पर्यूषण महापर्व :

आत्म-शुद्धि के आठ दिन। ये पर्व भाद्रपद (अगस्त /सितम्बर) महीने में मनाए जाते हैं। इस दिन मानव समाज ने इकट्ठे होकर अशुद्ध आहार (Non-Veg.) को छोड़ने का संकल्प किया था। इन दिनों में साल-भर की गलतियों के लिए क्षमा मांगना, तपस्या करना, शास्त्र-वाचना, प्रतिक्रमण करना आदि कार्य किये जाते हैं। 8वें दिन को 'संवत्सरी महापर्व' के रूप में मनाते हैं। संवत्सरी के दिन क्षमायाचना करते हैं। मिच्छामि दुक्कडं आदि करते हैं।

दीपावली :

प्रभु महावीर निर्वाण दिवस को दीपावली के रूप में मनाया जाता है। यह कार्तिक माह (October/November) में अमावस्या के दिन महावीर आरती गाना, उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ना, 1-3 दिन की तपस्या करना, घर में दीपक जलाना आदि कार्यक्रमों द्वारा इसे मनाया जाता है।

शाकाहार-सर्वोत्तम आहार



भ. महावीर ने उपदेश दिया है कि हर जीव जीना चाहता है, मरना कोई नहीं चाहता है। जैसे हम जीना चाहते हैं वैसे ही हर जीव जीना चाहता है। अतः हमें किसी जीव को मारने का कोई हक नहीं है। किसी की हिंसा करने का हक (Right) नहीं है।

भोजन के बिना जीव बहुत दिन तक जीवित नहीं रह सकता। खाने की यह आवश्यकता सभी प्रणियों में पायी जाती है चाहे वो मनुष्य हो, जानवर हो, कीट पतंगे हों, यहाँ तक कि पेड़ पौधों को भी प्रकृति ने खाने की कोई न कोई प्रक्रिया प्रदान की है।

हर जीव के भोजन के अनुरूप प्रकृति ने उस जीव के शरीर की संरचना बनायी है। हर जीव का भोजन निर्धारित है और हर जीव अपने निर्धारित भोजन के अलावा कुछ और नहीं खाता है। भोजन का निर्धारण भी प्रकृति के नियम के अंतर्गत ही है। उदाहरण के रूप में समझें तो अगर गाय का खाना घास फूस खाना है तो शेर का खाना माँसाहार है। शेर के शरीर की संरचना प्रकृति ने शिकार करने और माँस को खाने और पचाने के लिए बनायी है। शेर घास फूस नहीं खा सकता चूँकि उसका शरीर घास फूस

को पचा नहीं सकता। ठीक उसी प्रकार गाय के शरीर की संरचना भी घास फूस पचाने के हिसाब से ही बनी है। गाय कभी भी माँसाहार नहीं कर सकती ।

प्रकृति में सब जीव जलवायु के अनुकूल जगहों पर पलते बढ़ते हैं। जैसे ठंडे इलाकों में पाए जाने वाले जानवर, पेड़, पौधे गरम इलाकों में नहीं पाए जाते हैं और गर्म या सम-जलवायु वाले जीव ठंडे प्रदेशों में रह नहीं सकते। प्रकृति ने हर जलवायु और वातावरण के अनुरूप जीव जंतुओं की संरचना बनायी है और उसी संरचना के अनुरूप उनका भोजन निर्धारित किया है।

मनुष्य एक अकेला ऐसा जीव है, जो संसार के हर वातावरण, हर प्रकार की जलवायु में पाया जाता है। वो बेहद ठंडे इलाकों में भी रहता है और गर्म रेगिस्तानी इलाकों में भी रह सकता है। मनुष्य की हर जलवायु में रह सकने की क्षमता के कारण ही मनुष्य के भोजन में इतनी विविधता देखी और पायी जाती है। इसी लिए मनुष्य माँसाहारी भी है और शाकाहारी भी।

वातावरण और जलवायु के अनुरूप ही मनुष्य का आहार, विहार और विचार का निर्धारण हुआ। साथ ही उस आहार-विहार के अनुरूप ही मनुष्य के शरीर की संरचना में भी प्रकृति ने कुछ हद तक परिवर्तन किए। जैसे कि ऊँचे पहाड़ों में रहने वाले इंसान के Blood में हीमोग्लोबिन की मात्रा मैदानी इलाकों में रहने वाले मनुष्य से ज्यादा पायी जाती है। जिन इलाकों में सारे साल खेती बागवानी हो सकती है, वहाँ प्रकृति ने एक पूरी खाद्य शृंखला की संरचना की है। इस खाद्य शृंखला में शाकाहारी जीव घास फूल पत्ती पर अपना जीवन निर्वाह करते हैं और माँसाहारी जानवर इन शाकाहारी जीवों के शिकार और भक्षण के द्वारा जीवन यापन करते हैं।

इस खाद्य शृंखला का उद्देश्य प्रकृति द्वारा एक ऐसा संतुलन स्थापित करना है, जिसमें जीव की आयु के अनुरूप उसकी जनसंख्या पर नियंत्रण रह सके। इस के कारण प्रकृति में माँसाहारी जीवों की जनसंख्या शाकाहारी जीवों की तुलना में बहुत कम होती है।

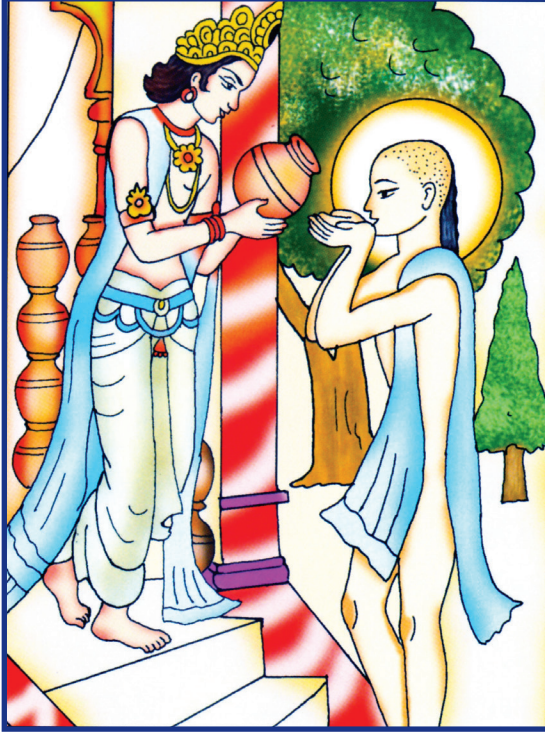
क्या मनुष्य को माँसाहार पूरी तरह से निषेध है? शायद इसका जवाब उस समय और उस परिप्रेक्ष्य में निहित है। अगर मनुष्य को शाकाहार भोजन उपलब्ध नहीं है और भोजन की निरंतरता निश्चित नहीं है तो मनुष्य को माँसाहार से निषेध नहीं सोचना चाहिए। परंतु माँसाहार को जिह्वा स्वाद हेतु, सामाजिक व्यवस्था या नए विकल्प के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए।

शाकाहार भोजन माँसाहार से ज़्यादा पौष्टिक, ज़्यादा स्वादिष्ट, ज़्यादा प्रयोगात्मक और ज़्यादा स्वस्थ चुनाव है। शाकाहार भोजन में जितने विकल्प मौजूद हैं, उतने माँसाहार में नहीं हैं। शाकाहार में सभी 6 स्वाद संभव है परंतु माँसाहार में इतने स्वाद निहित नहीं हैं। माँसाहार को खाने, पकाने के लिए भी शाकाहार से बहुत कम विकल्प हैं।

शाकाहार भोजन पर्यावरण की दृष्टि से भी माँसाहार भोजन की अपेक्षा कहीं ज़्यादा पर्यावरण अनुकूल है। माँसाहार भोजन को तैयार करने में शाकाहार भोजन की तुलना में कहीं ज़्यादा पानी, प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल और कार्बन उत्सर्जन होता है। आज जब हम पृथ्वी के भविष्य के लिए पर्यावरण की चिंता कर रहे हैं, ऐसे में शाकाहार एक ज़्यादा बेहतर विकल्प है।

शाकाहार एक बेहतर जीवन शैली, पर्यावरण हितैषी एवं एक ज़्यादा स्वस्थ भोजन विकल्प है। शाकाहार को सिर्फ धार्मिक दृष्टि से ना देख कर, उसके फायदे नुकसान के दृष्टिकोण से देखने पर यह ज्ञान होता है कि शाकाहार एक सर्वोत्तम आहार है और ये ही कारण है कि पारम्परिक रूप से माँसाहारी समाजों में भी शाकाहार का प्रचलन बहुत बढ़ा है।

भगवान् ऋषभदेव



जैन परम्परा में काल के दो भाग किए गए हैं, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी। उत्सर्पिणी में जीवों की आयु, अवगाहना (कद) व शक्ति में तथा प्रकृति के वर्ण, गन्ध, रस व स्पर्श गुण में क्रमशः उन्नति होती है। अवसर्पिणी में इन सब चीजों की क्रमशः अवनति होती है। प्रत्येक काल-विभाग में छह-छह आरे (विभाग) होते हैं। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पांचवां विभाग (दुःषमा आरा) चल रहा है। तीसरे काल-विभाग की बात है। कुलकर नाभि के घर मरुदेवी की कुक्षि से ऋषभदेव का जन्म हुआ। ऋषभ कुमार बड़े हुए। उन्होंने सुमंगला और सुनन्दा के साथ विवाह किया। सुमंगला के एक कन्या ब्राह्मी और भरत आदि 99 पुत्र हुए। सुनन्दा ने एक पुत्री सुन्दरी और एक पुत्र बाहुबली को जन्म दिया।

भगवान् ऋषभ के समय में न समाज था, न कोई स्वामी था और न कोई सेवक। कल्पवृक्षों से लोगों के जीवन की आवश्यकताएं पूरी हो जाती थी। अधिकांश लोग अरण्यवासी थे। ऋषभदेव उस युग के प्रथम राजा बने। उनकी जन्मजात प्रतिभा से लोग नए युग के निर्माण में जुट गए। अनेक नगर बसाए गए। लोग अरण्यवास छोड़कर नगरों में रहने लगे। उन्होंने लोगों को असि (सुरक्षा), मसी (व्यवसाय), कृषि (खेती), सेवा आदि कर्तव्यों का निर्देश दिया। अपने पुत्र भरत को 72 कलाएं सिखाईं। अपनी पुत्री ब्राह्मी को 18 लिपियों और सुन्दरी को गणित आदि का अध्ययन करवाया। विश्व इतिहास में स्त्री-शिक्षा और नारी की आत्मनिर्भरता का ये प्रथम प्रयास था। प्रभु द्वारा प्रदत्त ज्ञान से सब लोग अपने-अपने कार्यों में दक्ष बन गए और सुखपूर्वक रहने लगे। उन्होंने लम्बे समय तक राज्य किया। अन्त में वे अपने सौ पुत्रों को अलग-अलग राज्यों का भार सौंपकर मुनि बन गए।

भगवान् के साथ चार हजार अन्य पुरुषों ने भी दीक्षा ली। परन्तु वे सभी कठोर जैन-साधना का पालन नहीं कर सके, अतः जैन साधु का वेष छोड़कर अन्य साधु-संन्यासियों के वेष में रहने लगे।

चूंकि वह समय धर्म, सभ्यता और संस्कृति का आदिम युग था, अतः जैन साधुओं को भिक्षा-दान की विधि को कोई नहीं जानता था। प्रभु ऋषभ भी निरन्तर एक वर्ष तक भिक्षा-हेतु इधर-उधर घूमते रहे। कोई उन्हें हीरे-मोती, कोई उन्हें हाथी-घोड़े, कोई उन्हें महल-बावड़ी, कोई उन्हें दास-दासी, यहां तक कि कोई-कोई तो उन्हें अपने पुत्र-पुत्रियों को भी भेंट में देने लगता था, पर प्रभु ने कोई वस्तु ग्रहण नहीं की। अन्त में 13 महीने 10 दिन की निर्जल, निराहार साधना के पश्चात् वैशाख सुदी तृतीया (अक्षय तृतीया) के दिन हस्तिनापुर में युवराज श्रेयांस कुमार के हाथों से इक्षुरस के द्वारा प्रभु का पारणा हुआ।

कुल एक हजार वर्ष की साधना के बाद प्रभु ऋषभ को कैवल्य प्राप्त हुआ। चतुर्विध तीर्थ की स्थापना कर वे इस युग के प्रथम तीर्थंकर हुए। उनके 98 पुत्रों ने राज्य का त्याग कर उन्हीं के पास दीक्षा ग्रहण कर ली। भरत,



बाहुबली, ब्राह्मी, सुन्दरी ने भी संयम ग्रहण किया। सभी ने केवल ज्ञान प्राप्त कर अपनी आत्मा का कल्याण किया। भगवान् ऋषभ एक लाख पूर्व वर्ष तक श्रामण्य (साधु-धर्म) का पालन कर निर्वाण को प्राप्त हो गए।

भगवान् ऋषभदेव के 84 गणधर, 84,000 साधु व ब्राह्मी, सुन्दरी आदि 3,00,000 साध्वियाँ, श्रेयांस आदि 3,05,000 श्रावक, सुभद्रा आदि 5,54,000 श्राविकाएं थीं।

भगवान् ऋषभदेव जैन धर्म के ही नहीं, समस्त विश्व की विभूति थे। वैदिक धर्म में भी ऋषभदेव को अवतार माना गया है। भगवान् ऋषभदेव को श्रीमद् भगवद्गीता (5/4/14) में साक्षात् ईश्वर कहा है। ऋग्वेद, विष्णुपुराण, अग्नि पुराण, भागवत आदि वैदिक साहित्य में भी उनका गुण-कीर्तन आदर के साथ किया जाता है।

भगवान् महावीर के जीवन पर आधारित कहानियाँ

कहानी 1: “आनंद और सत्य की जीत”

बहुत समय पहले की बात है। भगवान् महावीर के अनेक भक्त थे। उन्हीं में से एक थे **आनंद श्रावक**—एक सच्चे, सरल और धर्मप्रिय गृहस्थ।

आनंद रोज़ भगवान् की वाणी सुनते, अच्छे विचारों को अपनाते और सच्चाई के मार्ग पर चलते थे। एक दिन, गहरी साधना और पवित्र भावों के कारण उन्हें एक विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ, जिसे **अवधि ज्ञान** कहा जाता है—ऐसा ज्ञान, जिससे दूर की चीज़ें भी जानी जा सकती हैं।

उसी समय भगवान् महावीर **वाणिज्यग्राम** में पधारे। भगवान् के प्रमुख शिष्य **गौतम स्वामी** भिक्षा के लिए नगर में निकले और वे आनंद के घर पहुँचे।

आनंद ने बड़े प्रेम से उनका स्वागत किया, वंदना की और विनम्रता से पूछा—
“गुरुदेव, क्या एक गृहस्थ को भी अवधि ज्ञान हो सकता है?”

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया— *“हाँ, हो सकता है... लेकिन उसकी सीमा होती है।”*

तब आनंद ने कहा— *“गुरुदेव, मुझे भी अवधि ज्ञान हुआ है, और उसकी सीमा इतनी-इतनी है...”* (उन्होंने अपने ज्ञान की सीमा बताई)

गौतम स्वामी को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने थोड़ा सोचकर कहा—
“नहीं, इतना अधिक ज्ञान गृहस्थ को नहीं हो सकता। तुम शायद गलत समझ रहे हो।”



आनंद शांत रहे, लेकिन दृढ़ता से बोले— “गुरुदेव, मैंने जो कहा है, वह सत्य है।”

अब गौतम स्वामी के मन में संदेह हुआ। वे सीधे भगवान् महावीर के पास पहुँचे और सारी बात बताई।

भगवान् महावीर बोले— “गौतम, आनंद जो कह रहा है, वह सत्य है। तुमने उसके सत्य वचन पर संदेह किया है। तुम्हें उसके पास जाकर क्षमा माँगनी चाहिए।”

यह सुनकर गौतम स्वामी तुरंत आनंद के घर गए। उन्होंने विनम्रता से कहा— “आनंद, मुझसे गलती हो गई। मैंने तुम्हारे सत्य पर विश्वास नहीं किया। कृपया मुझे क्षमा करें।”

आनंद ने तुरंत उन्हें क्षमा कर दिया। दोनों के चेहरे पर शांति और खुशी झलक रही थी।

सीख (Moral):

1. हमेशा सत्य का साथ देना चाहिए, चाहे परिस्थिति कैसी भी हो।
2. यदि हमसे गलती हो जाए, तो क्षमा माँगने में कभी संकोच नहीं करना चाहिए।
3. सच्चा महान वही है, जो सत्य को पहचानकर उसे स्वीकार करे।

कहानी 2: “अर्जुन माली का परिवर्तन”

बहुत समय पहले राजगृही नगरी में एक माली रहता था—अर्जुन माली। वह अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ साधारण लेकिन सुखी जीवन जी रहा था। नगर के बाहर एक सुंदर उद्यान था, जहाँ एक प्राचीन मंदिर भी था—मुद्गरपाणि यक्ष का।

एक दिन कुछ दुष्ट लोगों की टोली, जिसे ललिता गोष्ठी कहा जाता था, वहाँ आई। उन्होंने मौका देखकर अर्जुन को रस्सियों से बाँध दिया और उसकी पत्नी के साथ बहुत बुरा व्यवहार किया।

जब अर्जुन किसी तरह मुक्त हुआ और उसने यह सब देखा, तो उसका हृदय क्रोध और पीड़ा से भर गया। उसके भीतर बदले की आग जल उठी। उसी क्रोध में, यक्ष का प्रभाव उस पर छा गया, उसने उन सभी को और यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी मार डाला।

अब अर्जुन का मन पूरी तरह बदल चुका था। उसने एक भयानक प्रतिज्ञा ली— *“मैं हर रोज़ छह पुरुष और एक स्त्री को मारूँगा!”*

धीरे-धीरे पूरा राजगृही नगर उसके आतंक से कांपने लगा। लोग घरों से निकलने से डरने लगे।

इसी बीच, एक दिन **भगवान् महावीर** राजगृही नगरी में पधारे। लेकिन अर्जुन के डर के कारण कोई भी उनके दर्शन के लिए बाहर नहीं जा पा रहा था।

उसी नगर में एक धर्मात्मा व्यापारी रहते थे—**सेठ सुदर्शन**। जब उन्हें भगवान् के आगमन का समाचार मिला, तो वे खुद को रोक नहीं सके। उन्होंने अपनी माता से आज्ञा ली और अकेले ही नगर के बाहर भगवान् के दर्शन के लिए निकल पड़े।

जैसे ही अर्जुन ने उन्हें देखा, वह गुस्से में भरा हुआ **मुद्गर (गदा)** लेकर उनकी ओर दौड़ा।

लेकिन सुदर्शन जी डरे नहीं। वे वहीं शांत भाव से **ध्यान मुद्रा** में खड़े हो गए।

अर्जुन ने जैसे ही वार करने के लिए हाथ उठाया... उसका हाथ हवा में ही रुक गया!

वह चाहकर भी वार नहीं कर सका।



सुदर्शन जी की शांति, निडरता और भक्ति के सामने उसका क्रोध हार गया। उसके भीतर का अंधकार धीरे-धीरे शांत होने लगा।

सुदर्शन जी ने उसे प्रेम से समझाया और भगवान् महावीर के पास ले गए।

भगवान् महावीर ने भी अर्जुन से घृणा नहीं की, बल्कि उसे अपनाया और सही मार्ग दिखाया।

यह सब देखकर अर्जुन का हृदय बदल गया। उसने अपने पापों को स्वीकार किया और दीक्षा लेकर मुनि बन गया।

अब वही अर्जुन, जो पहले हिंसा करता था, कठोर तपस्या करने लगा और हर अपमान को क्षमा भाव से सहने लगा।

केवल छः महीनों में उसने अपने सभी कर्मों का क्षय कर लिया और मोक्ष (मुक्ति) को प्राप्त कर लिया।

सीख (Moral):

1. हमें किसी भी व्यक्ति से घृणा नहीं करनी चाहिए, चाहे वह कितना ही गलत क्यों न हो।
2. प्रेम, क्षमा और सही मार्गदर्शन से बुरा इंसान भी बदल सकता है।
3. सच्ची महानता दूसरों को सुधारने और अपनाने में है, न कि उनसे नफरत करने में।

श्री महावीर जी की आरती

जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो ।
जगनायक सुखदायक, अति गम्भीर प्रभो ॥ ॐ ॥

कुण्डलपुर में जन्मे, त्रिशला के जाये ।
पिता सिद्धार्थ राजा, सुन नर हर्षाए ॥ ॐ ॥

दीनानाथ दयानिधि, हैं मंगल कारी ।
जगहित संयम धारा, प्रभु पर-उपकारी ॥ ॐ ॥

पापाचार मिटाया, सत्पथ दिखलाया ।
दयाधर्म का झण्डा, जग में लहराया ॥ ॐ ॥

अर्जुनमाली गौतम, श्री चन्दनबाला ।
पार जगत से बेड़ा, इनका कर डाला ॥ ॐ ॥

पावन नाम तुम्हारा, जग तारण हारा ।
निशदिन जो नर ध्यावे, कष्ट मिटे सारा ॥ ॐ ॥

करुणासागर, तेरी महिमा है न्यारी ।
ज्ञानमुनि गुण गावे, चरणन बलिहारी ॥ ॐ ॥

प्राकृत भाषा की वर्णमाला

अ		आ		इ		ई			
अम्बं (आम) Mango		आसो (अश्व) Horse		इंदू (इंदु-चंद्रमा) Moon		ईसरो (ईश्वर) God			
उ		ऊ		ए		ओ			
उसभो (ऋषभ-बैल) Ox		ऊलखलं (ऊदूखल-ऊखल) Mortar		एगदंतो (एकदंत-गणेश जी) Ganesh Ji		ओज्जरं (झरना) Waterfall			
क		ख		ग		घ			
कण्णो (कर्ण-कान) Ear		खत्तं (क्षेत्र-खेत) Field		गावी (गौ-गाय) Cow		गिहं / घरं (गृह) Home			
च		छ		ज		झ			
चक्कं (चक्र) Wheel		छत्तं (छत्र-छतरी) Umbrella		जलं (पानी) Water		झाणी (ध्यान) Dhayani			
ट		ठ		ड		ढ		ण	
टंको (टूकू-पत्तन को कोटी) Top Mountain		ठण्णु (स्थानु-सूखा पेड़) Dry Tree		डण्डो (दण्ड-डण्डा) Stick		ढक्का (नगाड़ा) Drum		णाविओ (नापित-नाई) Barber	
त		थ		द		ध		न	
तेल्लं (तेल) Oil		थण्णं (थन) Udder		दुद्धं (दूध-दूध) Milk		धण्णु (धनुष) Bow		नेत्तं (नेत्र-आँख) Eye	
प		फ		ब		भ		म	
पुरिसो (पुरुष) Man		फुल्लं (फूल-पुष्प) Flower		बोरो (बदरी-बेर वृक्ष) Beri		भल्लुओ (भालू) Bear		मिगो (मृग-हिरण) Deer	
य		र		ल		व			
जाणं (यान) Vehicle		रिसहो (ऋषभ) Lord Rishabh Dev		लोणं (लवण-नमक) Salt		वत्थं (वस्त्र-कपड़ा) Cloth			
स		ह		<p>नोट: प्राकृत भाषा में ऋ, ऐ, औ, अः, श, ष, क्ष, ज, झ वर्णों का प्रयोग नहीं होता</p> <ul style="list-style-type: none"> • ड और ज से किसी शब्द की शुरुआत नहीं होती। • शब्द की आदि में प्रयुक्त य प्रायः ज हो जाता है। 					
संख (शंख) Shell		हल्लं (हल) Plough							

प्राकृत भाषा में Sorry के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' कहें।



मिच्छामि दुक्कडं

Thankyou के लिए 'धण्णवाओ' कहें।



धण्णवाओ



1

व्यावहारिक वाक्य

(Practical Sentences)



व्यावहारिक वाक्य

1. जय जिनेन्द्र !	Jai Jinendra!	जयउ जिणिंदो !
2. शुभ प्रभात!	Good Morning!	सुप्पभायं अत्थु !
3. शुभ मध्यान्ह!	Good Afternoon!	सुमज्झण्हं होउ !
4. शुभ संध्या!	Good Evening!	सुसंझा भवउ !
5. शुभ रात्रि!	Good Night!	सुरयणी हवेज्ज !
6. नमस्ते!	I bow to you!	नमोत्थु ते !
7. कैसे हो ?	How are you?	कहं अणुहवसि ?
8. ठीक हूं।	I am fine.	कुसली अहं।
9. भगवान की कृपा है।	Blessing of God.	पहुणो किवा अत्थि।
10. बैठिए	Please, Sit here.	आसहि
11. शाबाश	Very Good.	साहु! साहु!
12. आपका धन्यवाद	Thankyou	धण्णवाओ भवताणं
13. माफ कीजिए।	Sorry	मिच्छामि दुक्कडं।



उपर्युक्त वाक्यों को याद करें व इनका प्रयोग करें।

1

जैन आगमों के मुख्य सूत्र

Chew Something New

(Short, Sweet & Powerful Chants)

1. सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु

सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि (मोक्ष) का रास्ता दिखाएँ।

O God! Lead me on the path of Self Realization.

2. नमो जिणाणं जियभयाणं

भय को जीतने वाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार।

I bow to the Jinas who are the conquerors of fear.

3. संती संतिकरे लोए

शांतिनाथ प्रभु दुनिया में शांति करने वाले हैं।

Lord Shantinath is the Founder of Peace in the world.

4. साहु गोयम! पण्णा ते

हे गौतम! आपकी बुद्धि महान् है।

Dear Gautam! Your wisdom is great.

5. मिन्ती मे सव्वभूएसु

मेरी सभी जीवों से मित्रता है।

I am friendly towards all the living beings.

6. आरुग्ण बोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दिंतु

(हे प्रभो!) मुझे आरोग्य, शांति एवं धर्म प्रदान करें।

Dear God! Bless me with :-

1. Physical Health 2. Mental Peace 3. Spiritual Development

7. दाणाण सेट्टं अभयप्पयाणं

अभय दान सबसे बड़ा दान है।

Giving Safety is the best of gifts.

8. समयं गोयम! मा पमायाए

समय मात्र का भी प्रमाद मत करो।

Don't waste a single moment.

9. अष्पणा सच्चमेसेज्जा

स्वयं सत्य की खोज करो।

Discover the truth by yourself.

10. धम्मो मंगलमुक्किट्टं

धर्म उत्कृष्ट मंगल है।

Spirituality is the best blessing.

11. जैनं जयतु शासनम्

जैन धर्म की जय हो।

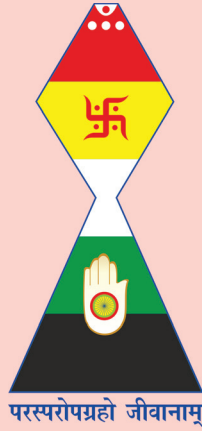
May Jainism's Victory prevail.

12. अभयंकरे वीरे अणंतचक्खू

भगवान् महावीर अनंत ज्ञान के धारक एवं भय को दूर करने वाले थे।

Lord Mahavira had infinite knowledge & was eliminator of fear.

1. पेंसिल को सीमा में छीलो, नहीं तो सुरमा चूर-चूर हो जाएगा। अति बुरी होती है।
2. बड़ों की भूल एकांत में कहनी चाहिए। यदि भूल करते समय टोकोगे तो आप उनकी आशातना कर रहे हो।
3. पुण्य तीन कारणों से पैदा किया जाता है— सेवा, इष्ट स्मरण, शुभ भावना।
4. संस्कार ही जीवन के निर्माण की आधार-शिला है।
5. जिसके सुनने से आत्मा में कल्याण की भावना पैदा हो, वह सच्चा धर्म है।
6. अगर छोटे बड़ों की तमीज नहीं करेंगे, आदर-मान नहीं करेंगे, अपने अहं में रहेंगे तो सदैव दुख उठाएंगे एवं कभी बड़े नहीं बन सकेंगे।
7. बचपन से ही क्षमा भाव बच्चे में होगा तो उसके अंतर में आनंद का स्रोत बहने लगेगा।
8. क्रोध आने पर मौन करें या वहाँ से परे हो जाए, शास्त्र की गाथा उच्चारण करें या प्रासुक जल पी लें।
9. जैसे दूध के उफान का जो भाग व्यर्थ जाता है, कोई काम नहीं आता वैसे ही क्रोध वश निकले शब्द व्यर्थ जाते हैं।



जैन संस्कार शिविर समिति, दिल्ली के मुख्य उद्देश्य

1. जैन धर्मानुसार जीवन-शैली अपनाकर आनन्द-युक्त जीवन (blissful life) बनाना ।
2. जैन धर्म के समृद्ध इतिहास, संस्कृति, दर्शन और साधना पद्धति को अत्यन्त सरल व आधुनिक तकनीक से सिखाना ।
3. सम्प्रदाय-निरपेक्ष धर्म की सही जानकारी देना ।
4. परिवार, समाज व राष्ट्र के प्रति वफादार और जागरूक नागरिक तैयार करना ।
5. स्वाध्याय-शील बनने की प्रेरणा देना ।
6. भय-मुक्त धार्मिक क्रियाओं की तरफ प्रेरित करना ।